"नागार्जुन के काव्य में सामाजिक सरोकार"

डा. संजय कुमार,
सहायक प्राध्यापक, रामलाल आनन्द महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

जनकवि नागार्जुन हिंदी साहित्य में प्रगतिशील कविता से जुड़े हुए हैं। नागार्जुन का रचना काल मुख्य तौर पर राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर काफी उथल-पुथल वाला रहा है। अंग्रेजी शासन से भारतीय जनता काफी त्रस्त थी। उस समय की परिस्थितियों से नागार्जुन बहुत प्रभावित हुए। बीसवीं सदी का तीसरा दशक राजनीतिक हलचल के अलावा मजदूरों के झगड़ों और हड़तालों का समय था। नागार्जुन ने न केवल सामाजिक परिस्थितियों पर कविताएं लिखी बल्कि सीधे तौर पर आंदोलन से भी जुड़े। संवेदनशील रचनाकार के रूप में सदैव जनता के बीच में रहने वाले नागार्जुन 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद मार्क्सवाद की ओर झुके किंतु भारतीय परिवेश हमेशा उनके अंदर अभिव्यक्ति का आधार बना रहा। इस कारण से वह किसी एक विशेष विचारधारा में बंध कर नहीं रह सके। इसका उदाहरण उनकी एक कविता में मिलता है। जिसमें माओ को श्रद्धा से देखने वाले नागार्जुन चीनी आक्रमण के समय लिखते हैं-

वह माओ कहाँ है? वह माओ मर गया

वह माओ कौन है, बेगाना है वह माओ

आओ इसकी नफरत को थूकों में नहलाओ
आओ इसके खूनी दाँत उखाड दें
आओ इसको जिन्दा ही कब्र में गाड दें।

नागार्जुन की कविताओं में समाज में पनपने वाली विकृतियों के प्रति गहरा आक्रोश है। उनके अनुसार समाज में आडंबर दिखावा और भ्रष्टाचार राष्ट्र की उन्नति में बाधक है और इनसे भावी पीढ़ी में गलत आचरण की शुरुआत होती है। आदमी की अभिव्यक्ति से विशुद्धता का लोप होता है और दूसरों पर निर्भरता बनी रहती है इन सब विसंगतियों से मानव मूल्यों का ह्रास होता है। कभी अपनी रचनाओं में इन विषम स्थितियों पर करारा व्यंग्य करते

हैं। कभी को आभास होता है कि आज के समाज में श्रेष्ठजनों की जगह चापलूसों की कद्र बढ़ती जा रही है, जिससे पूरी व्यवस्था ही दूषित होती जा रही है-

सपने में भी सच न बोलना, वरना पकडे जाओगे।

भइया लखनऊ दिल्ली पहुँचो-मेवा मिसरी पाओगे॥

माल मिलेगा-रेत सको यदि गला मजूर किसानों का।

हम मरभुखों से क्या होगा चरण गहो श्रीमानों का॥

अपने कथ्य में कवि नागार्जुन सामाजिक विषमता को अभिव्यक्ति के केंद्र में रखते हैं। अमीर गरीब के बीच बढ़ता फैसला न केवल आदमी में तनाव पैदा करता है बल्कि इससे पूंजीवादी शोषण का नया रूप सामने आता है जो कि चिरकाल तक अपना आभास देता रहता है। भारत में व्याप्त गरीबी इसी आभास का परिचायक है। आजादी के तुरंत बाद नागार्जुन भारतीय राजनीति की असलियत पहचान जाते हैं। बड़ी पीड़ा के साथ में वे महसूस करते हैं कि राजनेता का आम आदमी के साथ कोई संबंध नहीं है बल्कि उद्योगपति के साथ बढ़ती नजदीकियों ने आज आदमी को बहुत दूर कर दिया है-

जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं, व्यापारी हैं।

अंदर-अंदर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं॥

खादी ने मलमल से अपनी साठ-गांठ कर डाली है।

बिड़ला टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।।

जिस अधिकारों और मूल्यों को लेकर आजादी का संघर्ष जारी था वही मूल्य आजादी के बाद का काफूर हो गये। धर्म की परिधि से मानव बाहर हो गया और उसे अस्पृश्य माना गया। आदमी की इसी सोच ने समाज को पतनोन्मुख कर दिया समाज की प्रत्येक व्यवस्था के स्तर पर धर्म के शाश्वत अर्थ-कर्त्तव्य को ही भुला दिया गया, जिससे राष्ट्र का विकास और प्रगति प्रभावित होते हैं। नागार्जुन की कविताओं में धार्मिक आस्था का नया रूप नये स्वर में दिखाई देता है। उनके अनुसार आदमी को, उसके यथार्थ रूप में देखने में यदि धर्म आड़े आता है। तो वह धर्म एक पाखंड है। कवि मानवीय संवेदनाओं को मुख्य अनुभूति मानते हैं और इसकी सही अभिव्यक्ति की असली धर्म है, वे तिकड़म वाले धर्म को एकदम नकार देते हैं –

और पाँच पैसेदस पैसे

जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे

निकल रहे हैं जैसे-तैसे

श्रद्धा का तिकड़म से नाता

जय हे भिक्षुक जय हे दाता

पियो सन्त हुगली का पानी

पैसा सच है दुनिया फानी।

नागार्जुन के लिए धर्म एक लोक-कल्याणकारी दृष्टिकोण है अपनी रचनाओं में वे कहीं भी निजी मंगल को तरजीह नहीं देते हैं। यहां पर सामाजिक चेतना का विराट रुप नजर आता है। हिंदी कविता में यही सामाजिक चेतना उन्हें जनकवि के रूप में स्थापित करती है। इस संबन्ध में विष्णु खरे का कथन है- 'जो कवि जनता की कविताएं लिखने का जोखिम उठाता है, वह कभी-कभी विरोधाभास का खतरा भी उठाता है। यदि होने जनकवि होने का अर्थ है जनता के सुख-दुख, आशा-आकांक्षा, आस्था-भ्रांति, जय-पराजय, आक्रमण-पलायन में निष्कवच तथा निष्कपट रूप में शामिल होना, तो नागार्जुन कवि के अकेले वैसे कवि हैं । जनकवि पूरी तरह से जनता के दिमाग तथा कार्यकलापों का दर्पण होता है और चूँकि जनता एक ही समय तथा अलग-अलग समयों पर हमेशा एक जैसी नहीं होती इसलिए जनता के कवि में भी तथाकथित विरोधाभास दिखाई देंगे।'

बदलते हुए परिवेश ने मनुष्य के दृष्टिकोण को भी बदला है जिससे उसके अंदर भारतीय संस्कृति के मूल्यों में संरक्षण की जगह स्वार्थ, अनास्था और संकीर्णता ने अपनी जड बना ली है जिससे आदमी में धर्म,प्रांत और भाषा के प्रति भ्रम की स्थिति बनी हुई है, इससे देश की एकता और अखंडता का खतरा पैदा होता है जिसको बनाने और बचाने के लिए महापुरुषों ने अपना जीवन बलिदान कर दिया था। बड़े ही दुख की बात है कि आज इन्हीं महापुरुषों को राष्ट्र की जगह प्रांतीय रुप दिया जा रहा है। जबकि यह राष्ट्र नायक रहे हैं –

स्थापित नहीं होगी क्या

लाला लाजपत राय की प्रतिमा मद्रास में?

दिखाई नहीं पडेंगे। लखनऊ में सत्यमूर्ति?

सुभाष और जे.एम. सेन गुप्त सीमिति रहेंगे

भवानीपुर और शाम बाजार की दुकानों पर

तिलक नहीं निकलेंगे। पूना से बाहर?

नागार्जुन अपनी रचनाओं में उदार मानववाद की संकल्पना को साकार करते हैं सामाजिक प्रतिबद्धता से युक्त अपनी रचनाओं में कवि संवेदना के विभिन्न स्तरों को स्वर देते हैं। वे प्रत्येक आदमी में साहस, उत्साह और कर्म का संचार करते हैं ताकि वह पूर्ण सामाजिक बनने की अपेक्षा और जिज्ञासा को बनाए रखे -

कौन है वह व्यक्ति जिनको चाहिए न समाज?

कौन है वह एक जिसको नहीं पड़ता दूसरे से काज?

चाहिए किसको नहीं सहयोग?

चाहिए किसको नहीं सहवास?

कौन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराया यह उच्छवास।

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने न केवल आम आदमी की जिज्ञासाओं को अभिव्यक्ति दी है बल्कि कविता की व्यवस्था के प्रति प्रस्तुति का नयापन है। कविता की रचनात्मकता का यह रूप जनता में समानता का संचार करता है। 'नयी कविता : नये कवि' में विश्वम्भर मानव ने लिखा है कि - 'अपनी रचनाओं में नागार्जुन ने शाप से अधिक वरदान को, ईर्ष्या से अधिक सद्भावना को, घृणा से अधिक स्नेह और युद्ध से अधिक शांति को स्थान दिया है। कर्म की शक्ति में उनका अटूट , अगाध विश्वास है।'

नागार्जुन बौद्ध धर्म से प्रभावित रहे हैं जिसके कारण वे संसार में कुछ भी शास्वत नहीं मानते हैं उनके लिए क्षणिक संसार भी सत्य है। उनकी सोच में कुछ क्षणों के बयानबाजी भी समाज को क्रियाशील कर सकती है और उत्तेजना को पैदा करती है। नागार्जुन मानते हैं कि जो क्षणिक नहीं है वह वास्तविक नहीं है -

कवि हूँ सच है

किन्तु क्षणिक तथ्यों को यों अवहेलित करके

शाश्वत का सीमांत कभी क्या छू पाऊँगा?

इस संबंध में राजेश जोशी लिखते हैं- 'नागार्जुन के लिए जीवन के इस क्षण में ही उनकी सार्वभौमिकता भी निवास करती है, यह सामान्य चरण या घटना ही उनके लिए विशिष्ट है, वास्तविक है, इसलिए ऑब्जेक्ट है और इसी से

उन्हें काव्य उत्तेजना प्राप्त होती है। अपने अनुभव और ज्ञान से अपनी कल्पना शीलता और संवेदनात्मक था से इस सजीव वास्तविकता को, घटना को दर्ज करते हैं।' इससे बोध होता है कि नागार्जुन समय के हर क्षण में आदमी की रचनात्मकता देखना पसंद करते हैं। जीवन में खालीपन तभी पैदा होता है जब हमारे मन में संरचना का निर्माण नहीं होता। यह भौतिकतावादी संसार है अतः इसमें पग-पग पर निर्माण की संभावनाएं मौजूद हैं –

सामने फैला पड़ा शतरंज-सा संसार,

स्वप्न में भी मैं न इसको समझता निस्सार।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि नागार्जुन अपने समकालीन कवियों की तुलना में आमजन के अधिक नजदीक हैं। अन्य कवि प्रगतिवादी पंथ के चलते और आधुनिक युगबोध के चिंतन से अपने आप को भारत के ग्रामीण समाज से दूर कर लेते हैं। कवि नागार्जुन की अभिव्यक्ति की यह विशिष्टता है कि वे जनभाषा के माध्यम से ही यथार्थ का चित्रांकन करते हैं। इन्होंने जनता के लिए जनता का साहित्य रचा है। आम आदमी के अधिकारों के संरक्षण के लिए वह अपने आप को विचारधारा से बाहर जाने का साहस दिखाते हैं। वे समाज में परिवर्तन के आकांक्षी हैं जिससे साफ-सुथरी व्यवस्था का आरम्भ हो सके और पूंजीवाद तथा सामंतवाद का समाज से लोप हो सके जो आदमी के शोषण के लिए उत्तरदायी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

१. मिश्र, शोभाकान्त, *नागार्जुन चुनी हुई कविताएं*, वाणी प्रकाशन, 1985.